विष्णु प्रभाकर

QCCJA2

विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, सन् 1912 ई० को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जिला के मीरनपुर गाँव में हुआ था । इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई । पारिवारिक कारणों से इन्हें शिक्षा के लिए हिसार (हरियाणा) जाना पड़ा । वहीं पर एक हाई स्कूल में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की । विष्णु प्रभाकर के जीवन पर आर्य समाज तथा महात्मा गाँधी के जीवन दर्शन का गहरा प्रभाव है ।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में इन्होंने अनेक नये प्रयोग किए हैं - कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, स्केच और रिपोर्ताज में इनकी रचनाएँ हमें सर्वथा नई भावभूमि से परिचित कराती हैं । निःसंदेह यह भावभूमि यथार्थ, आदर्श और स्वाभाविकता की टकराहट से उपजी हुई लगती है । कहानियों में कोमल क्षणों की मार्मिक संवेदनाएँ मिलती हैं, इनकी कहानियाँ रोचक होने के साथ-साथ संवेदनशील भी हैं ।

विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में प्रारंभ से ही स्वदेशप्रेम, राष्ट्रीय चेतना और समाज सुधार का स्वर प्रमुख रहा है । इसके कारण इन्हें ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन भी बनना पड़ा । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रभाकर जी आकाशवाणी, दिल्ली में रेडियो रूपक लिखने का कार्य करने लगे । रेडियो रूपकों के अतिरिक्त इन्होंने रंगमंचीय नाटक भी लिखे हैं ।

इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - 'ढलती रात', 'स्वजयी' (उपन्यास), 'संघर्ष के बाद' (कहानी संग्रह), 'नव प्रभात', 'डॉक्टर' (नाटक), 'प्रकाश और परछाइयाँ', 'बारह एकांकी', 'अशोक' (एकांकी संग्रह), 'जाने अनजाने' (संस्मरण और रेखाचित्र) 'आवारा मसीहा' (शरतचंद्र की जीवनी) । 'आवारा मसीहा' इनकी सर्वाधिक चर्चित कृति रही है ।

'अष्टावक्र' शारीरिक रूप से कमजोर एक ऐसा चरित्र है जिसका जीवन-संघर्ष हिला देनेवाला है । दिक्कत यह है कि तथाकथित सभ्य समाज के पास इन जैसों के लिए कोई जगह नहीं है ।

अष्टावक्र

खजांचियों की विशाल अट्टालिका को जानेवाले मार्ग पर सौभाग्य के चिरसंगी दुर्भाग्य की तरह अनेक छोटी-छोटी, अंधेरी और बदबूदार कोठरियाँ बनी हुई थीं । उन्हीं में से एक में विचित्र व्यक्ति रहता था जिसे संस्कृत पढ़े-लिखे लोग अष्टावक्र कहा करते थे । उसके पैर कवि की नायिका की तरह बल खाते थे और उसका शरीर हिंडोले की तरह झूलता था । बोलने में वह साधारण आदमी के अनुपात से तिगुना समय लेता । वर्ण श्याम, नयन निरीह, शरीर एक शाश्वत खाज से पूर्ण, मुख लंबा और वक्र, वस्त्र कीट से चिकटे, यह था उसका व्यक्तित्व और इसमें यदि कुछ कमी रह जाती तो उसे शीनके शडाके पूरा कर देते । इस आखिरी बात के लिए उसकी माँ अक्सर उसकी लानत-मलामत किया करती थी ।

उसकी माँ, जी हाँ, उसकी माँ थी और केवल माँ ही थी । सुना है कभी बाप भी थे पर अष्टावक्र उन्हें याद रख सके इतना परिचय होने से पूर्व ही वे चल बसे । इन बातों को आज तीस वर्ष बीत गए थे । तब से अकेली माँ ही उसका लालन-पालन किया करती आ रही है । खजांचियों के वंश के नौनिहालों की राय में उसकी माँ का स्नेह इतना तीव्र था कि उसने अष्टावक्र की बुद्धि की बाढ़ मार दी थी और उसका भोलापन मूर्खता की सीमारेखा को पार कर गया था ।

यद्यपि असमय से आ जाने वाले बुढ़ापे के कारण उसकी माँ का शरीर प्रायः शिथिल हो चुका था, वह कुछ लंगड़ाकर भी चलती थी और निरंतर अभावों से जूझते-जूझते चिड़चिड़ापन भी उसका चिरसंगी बन चुका था, पर तो भी बेटे से मुक्ति पाने की बात उसके मन में कभी नहीं उठी । वह विधवा थी इसलिए उसके वस्त्र काले-किष्ट ही नहीं थे, फटे हुए भी थे जिनमें गरीबी ने पैबंद लगाने के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा था । उसके सिर के बाल सदा उलझे रहते थे । कभी-कभी खुजाने से तंग आकर जब वह अष्टावक्र को जूँ दिखाने के लिए बैठाती तो अच्छा-खासा मनोरंजक दृश्य बन जाता था । माँ उँगली से स्थान बताकर कहती, 'यहाँ देख' ।

अष्टावक्र दार्शनिक की-सी गंभीरता से इधर-उधर देखता और जवाब देता, 'माँ ! यहाँ तो बाल हैं, तोड़ दूँ ?

तब माँ माथा ठोक लेती और अष्टावक्र महाराज अपने वक्रमुख को और भी वक्र करके या तो कुएँ की जगत पर जा बैठते या फिर वहीं बैठकर आने-जाने वालों को ताकने लगते । उस समय उसे देखकर जड़ भरत या मलूकदास की याद आ जाना स्वाभाविक था । वास्तव में वह उसी अवतार-परंपरा का रत्न था । नींद खुलते ही वह पैरों को नीचे लटकाकर और हाथों को गोदी

में रखकर कुछ इस प्रकार बैठ जाता था, जिस प्रकार एक शिशु जननी के अंक में लेट जाता है। माँ आकर उसे नित्यकर्म की याद दिलाती । और जब कई बार के कहने पर भी वह न उठता तो तंग आकर उसका मुँह ऐसे रगड़-रगड़ धोती जैसे वह कोई अबोध शिशु हो । उसके बाद उसे कलेउ मिलता था जिसमें प्राय: रात की बची हुई रोटी या खोमचे की बची हुई चाट रहती थी ।

जी हाँ ! वह खोमचा लगाता था । अक्सर कचालू की चाट, मूंग की दाल की पकौड़ियाँ, दही के आलू और पानी के बतासे - इन सबको एक काले से लोहे के थाल में सजाकर वह बेचा करता था । उसके पास थाल रखने के लिए एक मूढी और मक्खी उड़ाने के लिए एक छड़ी भी रहती थी । मूढी को वह बगल में दबाता, थाल को बाएँ हाथ पर रखता और छड़ी को दाहिने हाथ में लेता, फिर गली-गली पुकारता फिरता, 'चाट लो चाट, आलू की चाट, पानी के बतासे ।'

यह बात नहीं है कि कोई उसकी चाट नहीं खरीदता था । इसके विपरीत जब देखो तब उसके आस-पास एक भीड़ लगी रहती थी । बच्चे ही नहीं, किशोर और कुमार तक उसके रूप और वाणी के प्रेमी थे । ठीक समय पर वे हजार काम छोड़कर दौड़े आते और उसके स्वर में स्वर मिलाकर पुकार उठते, 'पकौड़ी बतासा ले, उल्लू की चाट ले......।' फिर होंठों के भीतर-ही-भीतर हँसकर वे उसे एक पैसा देते और चार पत्ते चाटकर उठते । माँ उसे समझाकर भेजती थी, 'देख बेटा, पैसे के चार बतासे देना, चार पकौड़ी देना और चार चम्मच आलू देना ।' ऐसी अवस्था में यदि वह अपने ग्राहकों को चार पत्ते दे देता था तो हमारे उदार कानून की दृष्टि में वह कोई संगीन अपराध नहीं करता था । चार की संख्या उसके स्मृति-पटल पर पत्थर की रेखा की तरह अंकित हो गई थी ।

संध्या को उसके लौटने के समय माँ उसकी बाट जोहती बैठी रहती । उस पर निगाह पड़ते ही वह ललककर उठती । पहले उसका थाल सँभालती । फिर पानी भरे लोटे में से पैसे निकालकर गिनती । उस समय माथा ठोक लेना उसका नित्य का धर्म बन गया था । लगभग डेढ़ रुपये की बिक्री का सामान ले जाकर वह सदा दस-बारह आने के पैसे लेकर लौटता था । माँ की डाँट-डपट या सिखावन उसके इस अटल नियम को कभी भंग नहीं कर सकी । वैसे कभी-कभी उसकी बुद्धि भी जाग्रत हो उठती थी । उदाहरण के लिए एक दिन उसने माँ से कहा, 'माँ ! चाट तू बेचा कर । मुझे लड़के मारते हैं ।'

सुनकर माँ ने अपने लाल को कुछ इस प्रकार निहारा कि उसके शुष्क नयन सजल हो उठे । उसे कुछ याद आ गया । शैशव और यौवन का कुछ, जो स्वयं तो मधुर होता है पर उसकी याद मोटर के धुएँ की तरह काली, कड़वी और दुर्गंधपूर्ण होती है । यह बात नहीं कि माँ को अपनी चाट बेचने की बात सुनकर दुख हुआ था । उसी ने तो बेटे को साथ ले जाकर चाट बेचना सिखाया था पर, जब कोई सीख न सके तो क्या करे ? क्यों ऐसे व्यक्ति पैदा होते हैं ? क्यों वे जीते रहते हैं ? क्यों भगवान उनके अपमान को चुपचाप देखता रहता है........

बेटे ने कहा, 'माँ ! भूख लगी है' ।

माँ ने नहीं सुना ।

'माँ भूख....!' बेटे ने आग्रह से दोहराया ।

माँ चिनचिना पड़ी, 'तो मुझे खा ले ।'

बेटा कुछ समझा नहीं ।

'खा क्यों नहीं लेता ! पाप कट जाएगा । नाशपीटे ने नाक में दम कर रखा है । न जीने देवे है, न मरने देवे है । कब तक बैठी रहूँगी तेरी खातिर ? अमर पट्टा किसने लिखाया है । कोई पानी की बूँद भी नहीं डालेगा, पर तू समझे तब न.....'

वह बोलने लगी तो बोलती ही रही, पर सुनने के लिए अष्टावक्र वहाँ बैठा नहीं रहा । वह आसन-पाटी लेकर कुएँ की जगत पर जा लेटा । तब तक लेटा रहा जब तक बहुत रात बीत जाने पर, माँ खाना लेकर न आ गई । बिना कुछ बोले वह चुपचाप टुकड़े तोड़-तोड़ कर उसके मुँह में न देने लगी । खाते हुए बेटे ने एक बार केवल 'माँ' इतना ही कहा, पर वह बोलने की कठिनता के कारण इतना लंबा हो गया कि माँ को लगा मानो अखिल ब्रह्मांड उसे माँ कहकर पुकार रहा है ।

बेटे को खिलाकर उसने स्वयं खाया । फिर वहीं उसके पास जगत पर जा लेटी । सारी गरमी वे बिना ओढ़े, बिना बिछाए वहीं सोया करते थे । जाड़ों में कोठरी के किवाड़ बंद करके, चूल्हे की गरम राख और एक-दूसरे के शरीर से वे काफी गरमी ले लेते थे । परंतु फिर भी इस बार एक दिन अष्टावक्र को बुखार चढ़ ही आया । उस दिन खजांची वंश के नौनिहालों ने देखा, अष्टावक्र चिथड़ों में लिपटा, चूल्हे के पास लेटा हुआ छटपटा रहा है और उसकी माँ वहीं कोठरी के आगे मूढ़ी पर लोहे के उस थाल को रखे, कमची से मक्खी उड़ाती हुई चाट बेचने को बैठी है । वे स्थितप्रज्ञ अनासक्त बंधु जब आगे बढ़ गए तब अष्टावक्र ने सदा की तरह प्लुत स्वर में पुकारा, 'माँ !'

'क्या है ?' माँ ने कड़वे स्वर में पूछा ।

'पानी ।'

वह उठी । बेटे को पानी पिलाया और लौट चली पर, तभी अष्टावक्र ने उसकी धोती का छोर पकड़ लिया । वह क्रुद्ध हो उठी । बोली, 'छोड़ मुझे । एक पैसे की चाट नहीं बिकी । कल को क्या मुझे खाएगा !'

बेटे ने उसी स्वर में कहा, 'माँ....'

पैर ठिठक गए । वह मुड़ी और नीचे बैठकर उसका सिर दबाने लगी । बड़बड़ाने लगी, 'तेरी दवा लानी है । डॉक्टर पौने चार आने माँग लेगा । उतने पैसे तो आने दे ।'

फिर क्षणों ने करवट ली । पैसे आए, दवा आई, अष्टावक्र का ज्वर जाता रहा । परंतु उसके कुछ दिन बाद जब उसकी माँ को ज्वर चढ़ आया तो वह संकट में पड़ गया ।

लेटे-लेटे माँ ने आज्ञा दी, 'बेसन उठा ला ।'

'यह....'

'नहीं रे, यह तो राख है । वह उधर....

वह बेसन ले आया तो माँ ने लेटे-लेटे उसे पानी में घोला । उसमें आलू डाले । इतने पर वह बुरी तरह हाँफ उठी । धुएँ ने तन-मन को और भी कड़वा कर दिया । उधर तेल अलग छटपटा रहा था । किसी तरह पकौड़ी बनाने की रीति बेटे को समझाकर बोली, 'ले, अब धीरे-धीरे तेल में छोड़ता जा । धीरे-से छोड़ना नहीं तो जल जाएगा ।'

अष्टावक्र ने धीरे-से पर पैर जलने के भय से कुछ ऊँचे से जो मुट्ठी भर आलू बेसन कड़ाही में छोड़े तो तेल सीधा छाती पर आया । तब 'हाय माँ' कहकर वह वहीं लुढ़क गया ।

'क्या हुआ...क्या हुआ', कहती हुई माँ उठ बैठी । फिर तो उसका रोग न जाने कहाँ चला गया । सीधी डॉक्टर के पास पहुँची । सौभाग्य से तेल उछटता हुआ पड़ा था । इसलिए कुछ देर बाद अष्टावक्र उसकी जलन को सह गया और तब तक उसी तीव्र ज्वर में माँ ने उसका थाल तैयार कर दिया । लेकिन जब वह लौटा तो माँ में इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह उठकर उसका थाल ले लेती ।

अष्टावक्र को यह परिवर्तन अच्छा नहीं लगा । थाल रखकर वह थोड़ी देर विमूढ़-सा बैठा रहा । फिर माँ के पास आया । उसका बदन देखा । हाथ जैसे तवे से छू गया हो, पर इस स्पर्श ने माँ की चेतना को बल दिया । उसने आँख खोलकर बेटे को निहारा और यंत्रवत हाथ फैला दिए। मुँह से निकला, 'पैसे ?'

अष्टावक्र ने लोटे से निकालकर ठंढे-ठंढे पैसे माँ के जलते हुए हाथ पर रख दिए और चिरपरिचित स्वर में पुकारा, 'माँ...'

माँ ने हिम्मत की, पूछा, 'भूख लगी है ?'

बेटे ने दो क्षण रुककर उत्तर दिया, 'माँ, भूख....'

'खा ले ।' इतना ही माँ बोल सकी ।

पर माँ न दे तो बेटा खाए कैसे ? वह इतनी थकी हुई थी कि दवा की बात भी न कह सकी । बस पैसों को मुट्ठी में दबाए संज्ञाहीन-सी पड़ी रही । अष्टावक्र बैठ सका तब तक बैठा रहा । फिर वहीं लेट गया । आज माँ के शरीर से उसे और दिन से अधिक गरमी मिल रही थी। वह उसके पास और पास खिसकता आ रहा था ।

दूसरा दिन और किसी तरह बीत गया । तीसरे दिन माँ ने उठने का प्रयत्न किया पर पूरी शक्ति लगा चुकने के बाद भी वह केवल घिसट सकी । उसने गर्दन उठाकर देखा, चाट का थाल उसी तरह पड़ा है । अष्टावक्र ने कुछ छुआ तक नहीं ।

उसकी जलती हुई आँखों में पानी की बूंदें उतर आईं । उसने अपने काँपते हाथों को उठाकर पास लेटे हुए पुत्र के मुँह को सहलाया । पुत्र की चेतना जागी, सदा की भाँति उसने पुकारा, 'माँ....'

माँ की जैसे हिचकी बँधने को हुई पर उतनी शक्ति भी अब उसमें नहीं थी । वह रोने के प्रयत्न में एक ओर को लुढ़क गई । तब कुछ क्षण के लिए एक बार फिर अष्टावक्र की बुद्धि जाग्रत हुई । वह उठ बैठा और फिर अपनी समझ में बड़ी तेजी से बाहर निकला चला गया । उसके पीछे एक बहुत छोटे क्षण के लिए माँ की संज्ञा लौटी, हाथ से टटोलकर बेटे को देखा पर वह स्थान अब रिक्त था । तब यंत्रवत् उसका हाथ तेजी से घूमने लगा और हाथ के साथ हृदय भी । वह तेज हुआ, और तेज हुआ, और तेज और फिर सहसा बंद हो गया ।

बहुत देर बाद जब अष्टावक्र की अपर्याप्त पर याचना भरी भाषा की उपेक्षा न कर सकने के कारण एक डॉक्टर महोदय वहाँ आए तो माँ उस नरक से मुक्त हो चुकी थी ।

उसके बाद खजांचियों के राजभवन को जाने वाले उस मार्ग पर एक बार फिर नया परिवर्तन दिखाई दिया । कुलफी बनाने वाला बूढ़ा उस कोठरी में आ बसा । पर उसी संध्या को वह क्या देखता है कि कहीं से आकर अष्टावक्र अपने सामान सहित कुएँ की जगत पर गुमसुम बैठा है और उसका वक्र मुख किसी अज्ञात गंभीरता से और भी वक्र हो उठा है । इससे पूर्व वह उससे कुछ पूछे, बालकों के एक दल ने उसे देख लिया । वे हर्ष से चिल्ला उठे, 'बतासा ले । उल्लू की चाट ले ।'

पर जब उन्हें कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला तो उनका हर्ष मुरझाने लगा । एक बालक ने आगे बढ़कर पूछा, 'तुम अब चाट नहीं बेचोगे ?'

दूसरी बालिका अत्यंत गंभीर हुई, 'इसकी माँ मर गई है ।'

तीसरा लड़का शरारती था, चिल्लाया, 'पागल है ।'

अब तक बूढ़ा कुलफीवाला पास आ गया था । बालक भाग गए । उसने अष्टावक्र से पूछा, 'क्यों भाग आए ?'

अष्टावक्र ने एक क्षण मानो कुछ सोचा, फिर प्लुप्त-स्वर में कहा, 'माँ.....।'

'माँ नहीं आएगी, पगले !'

'माँ कहाँ गई ?'

'मर गई ।'

तब अष्टावक्र ने उस बूढ़े कुलफी वाले किराएदार को ऐसी विचित्र दृष्टि से देखा मानो कहता हो—तुम क्या कहते हो, जी । मर गई है तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह लौटेगी ही नहीं । उसकी इस चुनौती को अस्वीकार करने में असमर्थ बूढ़े कुलफीवाले ने गरदन मोड़ ली । मन कुछ गीला-गीला हो आया । सुना अष्टावक्र कह रहा था, 'माँ आएगी । चाट बनाएगी ।'

उस रात वहीं नीलांबर के नीचे उस जगत पर सोते-सोते कई बार बड़बड़ाया, 'माँ... भूख....'

सबेरे बड़े खजांची ने एक बार फिर दया करके उसे अपने बाग में भेज दिया । पशुओं की बैरक के पास काफी खुली जगह पड़ी थी, पर उसे वह अच्छी नहीं लगी । खजांचिन माँ के

कपड़े भी उसने अस्वीकार कर दिए । रोटी देखकर उसे माँ की याद आ गई । बोला, 'माँ चाट बनाएगी । मैं बेचूँगा, फिर खाऊँगा ।'

और उसने नहीं खाया ।

और उसने कुएँ की जगत को नहीं छोड़ा ।

पर एक दिन जगत पर बैठे-बैठे उसकी बुद्धि एक बार फिर जाग्रत हो उठी । वह चाटवाला खाली थाल लेकर अपने पुराने परिचित मार्गों पर घूमने लगा । वे ही मकान, वही सड़क और वही मानव समुदाय और वही बोलियाँ......

'चाटवाला आया है ।'

'कौन अष्टावक्र ?'

'हाँ ।'

'पर इसके पास चाट नहीं है ।'

'बेचारे की माँ मर गई ।'

एक बार, दो बार, दस बार, बार-बार उसने सुना, 'बेचारे की माँ मर गई है ।' और इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी जाग्रत बुद्धि सोचने लगी–माँ मर गई है । माँ मर गई है । माँ मर गई है तो वह अब नहीं आएगी । हाँ, वह अब नहीं आएगी । आती ही नहीं ।

जिस समय उसकी बुद्धि में यह तर्क जनम ले रहा था उसी समय एक वृद्धा ने अपनी वाणी में स्नेह भरकर उसे रोटी खाने के लिए कहा । उसने कई क्षण उस वृद्धा की ओर देखा, देखता रहा, फिर न जाने क्या हुआ वह वहीं बैठ गया ।

उसी रात को कुल्फी वाले ने सुना, अष्टावक्र बार-बार माँ-माँ पुकार रहा है । उस पुकार में सदा की तरह सरल विश्वास नहीं है, एक कराहट है । कुल्फीवाले ने करवट बदल ली, पर इस ओर कर्ण-रंध्र में वह कराहट और भी कसक उठी । वह लेट न सका । धीरे-धीरे न उठा और झुंझलाता हुआ वहाँ आया जहाँ अष्टावक्र छटपटा रहा था । देखकर जाना उसके पेट में तीव्र दर्द है । यहाँ तक कि देखते-देखते उसे दस्त शुरू हो गए । अब तो कुलफीवाला घबरा उठा । दौड़ा हुआ बड़े खजांची के पास पहुँचा । वे पहले तो चिनचिनाए, फिर अस्पताल को फोन किया । कुछ देर बाद गाड़ी आई और अष्टावक्र को लाद कर ले गई । उसके दो घंटे बाद कुलफीवाले ने फिर आइसोलेशन वार्ड में उसे दूर से देखा । वह अकेला था । उसकी कराहट बढ़ती जा रही थी । प्राण खिंच रहे थे । वह लगभग मूर्च्छित था । कभी-कभी उसकी जीभ होंठों से संपर्क स्थापित करने की चेष्टा करती थी । शायद वह प्यासा था ।

डॉक्टर आया, देखकर बोला, 'बस, अब समाप्त होने वाला है ।'

नर्स ने कुलफीवाले से पूछा, 'तुम्हारा मरीज है ?'

कुलफीवाले ने गरदन हिलाकर जवाब दिया, 'जी नहीं । इसके कोई नहीं है ।'
उसी क्षण अष्टावक्र की बुद्धि जैसे जाग्रत हुई हो । धीमे पर गंभीर स्वर में पुकारा, 'माँ.....

दोनों एक साथ उसके पास लपके । कुलफीवाले ने समझा, शायद संज्ञा लौट रही है पर नर्स जानती थी, वह मृत्यु की चेतावनी है ।

अष्टावक्र ने वाक्य पूरा किया, 'माँ, अब नहीं खाऊँगा...अब नहीं....'

और फिर उसकी चेतना मौन हो गई, सदा के लिए मौन ।

नर्स ने शीघ्रता से उसका मुँह ढँककर यंत्रवत भंगी को पुकारा, 'जमादार ! स्ट्रेचर लाओ ।'

जमादार ने दूर से सधा हुआ जवाब दिया, 'अभी लाया मिस साहब !' लौटते समय कुलफीवाला परम शांत था । यद्यपि उसके मन में करुणा का उद्रेक हुआ था तो भी उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया जिसने अष्टावक्र को अपने पास बुलाकर उन दोनों को सुख की नींद सोने का अवसर दिया ।

♦ ♦ ♦

अभ्यास

पाठ के साथ

1. इस रेखाचित्र के प्रधान पात्र को लेखक ने अष्टावक्र क्यों कहा है ?
2. कोठरियाँ कहाँ बनी हुई थीं ?
3. अष्टावक्र कहाँ रहता था ?
4. अष्टावक्र के पिता कब चल बसे थे ?
5. चिड़चिड़ापन अष्टावक्र की माँ का चिरसंगी क्यों बन गया था ?
6. अष्टावक्र क्या-क्या बेचा करता था ?
7. चार की संख्या अष्टावक्र के स्मृति-पटल पर पत्थर की रेखा की तरह अंकित क्यों हो गई थी ?
8. माँ माथा क्यों ठोका करती थी ?
9. गर्मी के दिनों में माँ-बेटे कहाँ सोया करते थे ?
10. अष्टावक्र 'हाय माँ' कहकर वहीं क्यों लुढ़क गया ?
11. माँ के शुष्क नयन सजल क्यों हो उठे ?
12. अष्टावक्र विमूढ़-सा क्यों बैठा रहा ?
13. कुलफीवाले ने ईश्वर को धन्यवाद क्यों दिया ?
14. इस पाठ का सबसे मार्मिक प्रसंग कौन है और क्यों ?
15. इस रेखाचित्र का सारांश लिखें ।
16. माँ की मृत्यु के पश्चात् अष्टावक्र की मानसिक स्थिति का वर्णन करें ।

पाठ के आस-पास

1. अपने आस-पास पड़ोस में ऐसे चरित्र की खोज करें जो अष्टावक्र से मिलता-जुलता हो । उसकी गरीबी और संघर्ष का चित्रण करते हुए एक रेखाचित्र खिंचिए ।
2. अष्टावक्र के नाम से एक ऋषिपुत्र हो चुके हैं जिनका बौद्धिक और आध्यात्मिक संपर्क राजर्षि जनक से हुआ था । उन्होंने जनक को जो उपदेश दिए उसे अष्टावक्र गीता या महागीता कहते हैं । इसके संबंध में विस्तृत विवरण अपने शिक्षक या अन्य विज्ञजनों से मालूम करें ।

भाषा की बात

1. निम्नलिखित शब्दों के विपरीतार्थक रूप लिखें –
   विशाल, बदबूदार, सौभाग्य, शाश्वत, मूर्ख, विधवा
2. निम्नलिखित शब्दों के वचन परिवर्तित करें –
   बेटे, कपड़े, बूँदें, माता, लता, कोठरियाँ
3. निम्नलिखित शब्दों का वाक्य-प्रयोग द्वारा लिंग-निर्णय करें –
   सौभाग्य, बुद्धि, वस्त्र, उँगली, कुआँ, गोद, दही, पानी, पकौड़ी, संध्या
4. उसने कहा कि वह नहीं आएगा । पाठ में आए इस तरह के मिश्र वाक्यों का चुनाव करें ।
5. पाठ में आए पाँच अव्यय पदों को चुनें ।
6. 'पत्थर की रेखा' और 'माथा ठोंकना' मुहावरे का वाक्य-प्रयोग द्वारा अर्थ स्पष्ट करें ।

शब्द निधि :

अट्टालिका	:	ऊँचा बहुमंजिला भवन	स्थितप्रज्ञ	:	स्थिर मति, जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी है
चिरसंगी	:	लंबे समय तक साथ रहनेवाला			
शाश्वत	:	चिरंतन, स्थाई	अनासक्त	:	शांत, आसक्ति से मुक्त
लानत-मलामत	:	दुर्दशा करना	यंत्रवत्	:	मशीन की तरह
पैबंद	:	थिगली, जोड़	संज्ञाहीन	:	अचेत
वक्र	:	टेढ़ा	गुमसुम	:	चुप-चाप
खोमचा	:	बाँस की खपचियों से बनी वस्तु जिसमें पकौड़े आदि बेचे जाते हैं ।	प्लुत स्वर	:	लंबा खींचा हुआ स्वर
			कसक	:	अफसोस, पछतावा, पीड़ा
			आइसोलेशन वार्ड	:	वह कक्ष (वार्ड) जिसमें संक्रामक रोगी को अकेला रखा जाता है ।
स्मृति	:	याद, स्मरण			
सजल	:	भीगा, आर्द्र, भावुक			